B.A (III) Paper - (II)
डॉ. शेखर 06/11/2020

अध्ययन है। सामाजिक मनोविज्ञान का उद्देश्य समाज में मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों को ढूंढ़ना है। समाजशास्त्र की कोई भी स्थापना इन सामान्य नियमों के विपरीत नहीं हो सकती। इस प्रकार समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। समाजदर्शन भी सामाजिक मनोविज्ञान से घनिष्ठरूपेण सम्बन्धित है। समाजोपयोगी दर्शन प्रदान करने के लिए समाज दर्शन भी व्यक्ति और समाज की वास्तविक समस्याओं को समझने का प्रयास करता है। हमारे विचार, हमारी धारणायें जब तक वास्तविकताओं के धरातल पर केन्द्रित नहीं होंगी तब तक हम ऐसे दर्शन का निर्माण नहीं कर सकते जो समाज को दिशा निर्देश प्रदान कर सके। इस प्रकार समाजशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान तथा समाज दर्शन तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं। समाजशास्त्र और सामाजिक मनोविज्ञान से हटकर समाज दर्शन परस्पर आदर्शों व मूल्यों की स्थापना करता है जो समाज का नव निर्माण करने में सहायक होता है।

दर्शन शास्त्र और समाज दर्शन का सम्बन्ध
(Relationship between Philosophy and Social Philosophy)

दर्शन शास्त्र वह विज्ञान है जो समग्ररूप में जीवन और जगत के तात्विक पक्ष का तार्किक, वैज्ञानिक, चिन्तनात्मक, समीक्षात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन है। अरस्तू के शब्दों में 'दर्शन परमतत्व के वास्तविक स्वरूप की जांच करता है', जबकि हीगेल के अनुसार 'दर्शन वास्तविकताओं का तत्व दर्शन है।' ब्रेडले ने 'दर्शन' को परिभाषित करते हुए लिखा है कि दर्शनशास्त्र अथवा तत्व विज्ञान दृश्य जगत की अपेक्षा वास्तविक तत्व को जानने का प्रयास है। स्पेन्सर और कॉम्टे प्रभृति दार्शनिकों ने दर्शनशास्त्र को 'विज्ञानों का विज्ञान' कहा है।

उपरोक्त मन्तव्यों से दर्शनशास्त्र के विषय में जो धारणा बनती है, उससे यह परिलक्षित होता है कि समाजदर्शन दर्शनशास्त्र की ही प्रमुख शाखा है। दोनों ही विचारधारायें मानव समाज और जीवन के आदर्शों तथा मूल्यों की स्थापना को अपना प्रमुख लक्ष्य मानती हैं। दर्शनशास्त्र का ही अंग होने के कारण समाज दर्शन भी चिन्तनात्मक, तार्किक, विश्लेषणपरक, वैज्ञानिक और समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। परन्तु दर्शनशास्त्र और समाजदर्शन के अध्ययन-क्षेत्र भिन्न हैं, जैसा कि मैकेन्जी के निम्न कथन से द्योतित होता है "दर्शनशास्त्र, जिसकी विज्ञान से अपनी पृथक स्थिति है, कुछ विशेष तत्वों के बारे में चिंतन का प्रयास है..... अपने व्यापक उद्देश्यों के रूप में वह अपने अनुभवात्मक संसार के विशेष तथ्यों और सत्यों की व्याख्या करने की चेष्टा करता है जो समूचे विश्व अथवा ब्रह्माण्ड का अंग या पहलू है। समाजदर्शन, विशेष रूप से मानव जाति के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उस संगठन के साथ वह मानव जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है। जहां एक ओर समाजदर्शन केवल सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, नियमों व सिद्धान्त की विवेचना तक ही सीमित है, वहीं दर्शनशास्त्र के अध्ययन-क्षेत्र के अन्तर्गत ज्ञान सम्बन्धी समस्यायें, अनुभव सम्बन्धी समस्यायें, अस्तित्व और सदवस्तु सम्बन्धी समस्यायें तथा मूल्य सम्बन्धी समस्यायें भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार दर्शन वस्तुतः सम्पूर्ण सत्य के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। वह जीवन के अर्थ एवं मूल्य को समझने का प्रयास है तथा जीवन की समस्याओं का विवेचनात्मक अध्ययन है। ए0 एन0 ह्वाइटहेट (A.N.Whitehead) ने कहा है कि दर्शन में हम रहस्य की समुचित व्याख्या करने की कोशिश करते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि दर्शनशास्त्र का अभिन्न अंग होने के कारण समाजदर्शन उसी की तरह ही आलोचनात्मक, समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक और समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। वस्तुतः दर्शन और दार्शनिक की विचारधारा ही समाजदर्शन की आधारशिला होती है। दार्शनिक क्षेत्र में हो रही प्रगति और दार्शनिक विकास का प्रभाव समाजदर्शन पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साम्यवादी विचारधारा ने साम्यवादी समाज दर्शन को जन्म दिया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दर्शन समाजदर्शन को तथा समाजदर्शन दर्शन को प्रभावित करता है।

उपरोक्त विवेचना यह सिद्ध करती है कि समाजदर्शन का नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और

दर्शनशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये सारे सामाजिक विज्ञान अपने- अपने विशिष्ट निष्कर्षों से ही सन्तुष्ट रहते हैं। समाज-दर्शन इन समाज विज्ञानों का एकीकरण करता है और अनेक निष्कर्षों की एक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया द्वारा इन सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों का उपयोग मानव जाति के लिए अधिक संगत तथा सुचारु रूप से संभव हो जाता है। एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था व मानदण्ड की स्थापना के लिए यह इन विज्ञानों से विषय सामग्री ग्रहण करता है और उनमें समन्वय करके विविध आदर्शों व मूल्यों की स्थापना करता है। इसके साथ ही साथ समाजदर्शन शाश्वत सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करता है। समाज दर्शन जिन सामाजिक मूल्यों व आदर्शों की स्थापना करता है, वे मनुष्य को सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढने में सहायक सिद्ध होते हैं। इन्हीं सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही मनुष्य सामाजिक सम्बन्धों को समाप्त करता है तथा समय-समय पर अपेक्षित परिवर्तन लाने में सक्षम होता है। उसी प्रकार समाज दर्शन का प्रभाव राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्र में भी देखा जा सकता है। समाज दर्शन राज्य के अधिकारों और कर्त्तव्यों की मानव समाज के परम लक्ष्य के प्रकाश में समीक्षा करता है। इस प्रकार सरकार का रूप, राज्य के अधिकार और कर्त्तव्य, राज्य का नागरिक से सम्बन्ध, राजनीतिक दायित्व की समस्या, कानून और न्याय की अवधारणा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में भी समाज दर्शन का प्रभाव दर्शनीय है। पुनः आर्थिक क्षेत्र में समाज दर्शन यह उद्घाटित करता है कि आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य केवल धनोपार्जन नहीं अपितु मानव-कल्याण भी है। मार्क्स और गांधी जी जैसे समाज-दार्शनिकों ने इस क्षेत्र में समाज को एक नूतन दिशा प्रदान की है, इस प्रकार समाज दर्शन का सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी प्रभाव परिलक्षित होता है। परिवार, विवाह, व्यवसाय आदि सामाजिक संस्थाओं पर भी समाज दर्शन द्वारा स्थापित मूल्यों व आदर्शों का प्रभाव पड़ता है। इन सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध विविध जटिल समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने में भी समाज दर्शन सहायक सिद्ध होता है। समाज दर्शन सांस्कृतिक विकास के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है जिनमें रीति रिवाज, संस्कार, परम्परायें, आध्यात्मिक क्षेत्र से जुड़ी समस्यायें भी सम्मिलित हैं। इसी धार्मिक संदर्भ में समाज दर्शन परम्परा और आधुनिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार समाज दर्शन हमें सामाजिक घटनाओं में एक अन्तर्दृष्टि, मार्गनिर्देश, लक्ष्य तथा प्रणालियों के विषय में स्पष्ट विचार देता है। प्रो० मैकेन्जी ने लिखा है, "वह हमें यह देखने में सहायता करता है कि वे कौन से निर्देशक सिद्धान्त हैं जिनसे हमारे मार्ग का निर्देशन होना चाहिये।"[1] सभी बिन्दुओं पर दृष्टिपात करते हुए हम कह सकते हैं कि व्यक्ति और समाज के सम्यक् और **समुचित विकास** के लिये **समाजदर्शन की उपादेयता असंदिग्ध है।**

समाज दर्शन और राजनीति दर्शन

(Social Philosophy and Political Philosophy)

समकालीन चिन्तनधारा में समाज दर्शन को राजनीति दर्शन से पूर्णरूपेण असंपृक्त करके समझना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि ये दोनों ही शास्त्र क्रमशः समाज और राज्य की समस्याओं का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करते हैं। समाज और राज्य यद्यपि स्वतन्त्र रूप से अस्तित्वमान संस्थायें हैं परन्तु दोनों एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुये हैं। इसी प्रकार इन दोनों संस्थाओं की समस्याओं के बीच भी कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जिन समस्याओं का अध्ययन और जिनकी विवेचना समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र की विषयवस्तु हैं, वे समाज दर्शन और राजनीति दर्शन की विषय वस्तु में नहीं आती है। वस्तुतः दोनों ही प्रकार के समाज विज्ञानों का दृष्टिकोण ही भिन्न है। इस प्रकार के दृष्टिकोण-भेद को समझने के लिए 'सामाजिक अध्ययन' शब्द का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। 'सामाजिक अध्ययन' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है- (1) व्यापक अर्थ में और (2) संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ में सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत राजनीतिक समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही समाज में होने वाली मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि का अध्ययन किया जाता है। संकीर्ण अर्थ में सामाजिक अध्ययन शब्द का जब प्रयोग किया जाता है तो उसके अन्तर्गत उन्हीं सामाजिक गतिविधियों का अध्ययन

1. "It does help us to see what are the guiding principles by which our course has to be directed."—J.S. Mackenzie UvH 17

किया जाता है जो अन्य सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन क्षेत्र का भाग नहीं हैं। आधुनिक काल में 'समाज दर्शन' के अन्तर्गत 'सामाजिक अध्ययन' को व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है और परिणामस्वरूप उसके अन्तर्गत राजनीतिक समस्याओं, राजनीतिक आदर्शों और राजनीतिक अवधारणाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

समाज दर्शन और राजनीति दर्शन वस्तुतः दर्शन की ही शाखायें हैं और इस प्रकार समाज और राज्य की समस्याओं का अध्ययन दार्शनिक दृष्टिकोण से करते हैं। दर्शन के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करने से पता चलता है कि इसमें कई प्रकार के परिवर्तन समय-समय पर होते रहे हैं, इसके दृष्टिकोण में, विधियों में बदलाव होते रहे हैं परन्तु प्रो0 डी0 डी0 रैफेल ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पश्चिमी दर्शन की मुख्य परम्परा दो अन्तर्सम्बन्धित लक्ष्यों की ओर उन्मुख रही है- (अ) अवधारणाओं या संप्रत्ययों का स्पष्टीकरण और (ब) विश्वासों का समीक्षात्मक मूल्यांकन।[1]

प्राचीन (पारम्परिक) दर्शन में अवधारणाओं का स्पष्टीकरण का लक्ष्य गौण स्थान रखता है और इसका प्रयोग विश्वासों के मूल्यांकन रूपी प्रमुख लक्ष्य के सहायक तत्व के रूप में किया गया है। परन्तु इसके विपरीत आधुनिक एवं समकालीन दर्शन में 'संप्रत्ययों के स्पष्टीकरण' (Concepts) को प्रमुख स्थान दिया गया है।

पारम्परिक दर्शन का उद्देश्य उन विश्वासों का समीक्षात्मक या समालोचनात्मक मूल्यांकन करना था जिन्हें हम उनके औचित्य की विवेचना किये बिना ही स्वीकार कर लेते हैं या उनका खंडन करते हैं। इसके पश्चात हम उन विश्वासों या मान्यताओं की स्वीकृति या अस्वीकृति का बौद्धिक आधार ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं जिससे हम अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति के औचित्य को प्रदर्शित कर सकें। इसी परिप्रेक्ष्य में दर्शन और विज्ञान के लक्ष्य और उनके दृष्टिकोण अलग हो जाते हैं। विज्ञान जहाँ तथ्यों की व्याख्या करने का प्रयास करता है, दर्शन वहीं पर मान्यताओं की स्वीकृति के औचित्य को और उनकी तर्कसंगतता को दिखाने का प्रयास करता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि विश्वासों या मान्यताओं के बौद्धिक आधार ढूंढ़ने का कार्य केवल भावात्मक दृष्टि से ही नहीं हो सकता है अपितु यह कार्य हम निषेधात्मक दृष्टिकोण से भी करते हैं। हम केवल अपने विश्वासों या मान्यताओं की स्वीकृति का ही औचित्य दिखाने का प्रयास नहीं करते अपितु कतिपय अन्य मान्यताओं और विश्वासों के खंडन या उनकी अस्वीकृति का भी बौद्धिक आधार ढूंढ़ते हैं। हम अपनी स्वीकृति का औचित्य भी प्रमाणित करते हैं।

उपरोक्त कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि दार्शनिकों का कार्य सदैव प्रत्येक विश्वास का समीक्षात्मक मूल्यांकन करना है। वस्तुतः कुछ विशिष्ट प्रकार के विश्वासों या मान्यताओं से सम्बन्धित दार्शनिक समस्यायें ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती हैं जैसे कि जब पूर्व स्वीकृत किसी विश्वास की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाली कोई घटना घटित हो जाती है या कोई नवीन धारणा पूर्वस्वीकृत विश्वास के साथ असंगत प्रतीत होती है, ऐसी परिस्थितियों में पूर्व-स्वीकृत विश्वास या मान्यता की प्रामाणिकता को प्रदर्शित करने की आवश्यकता का अनुभव होता है तथा दार्शनिकों से अपेक्षा की जाती है कि वे इस प्रकार के विश्वास की स्वीकृति के औचित्य को प्रदर्शित करें। उदाहरण के लिए सृष्टि के विकास सम्बन्धी डार्विन का सिद्धान्त तथा बाइबिल की सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी धारणा के बीच विसंगति प्रतीत होती है। जब भी नवीन सिद्धान्त परम्परागत विश्वासों या मान्यताओं के विरुद्ध होते हैं तो सुसंगति की स्थापना के लिए निम्न तीन संभावनाओं में किसी एक का चयन हम करते हैं—

(1) परम्परागत विश्वासों को कल्पना पर आधारित मानकर या सीमित प्रमाणयुक्त मानकर उसे मिथ (Myth) कहकर अस्वीकृत कर दिया जाता है।

(2) नूतन धारणाओं और नवीन विश्वासों को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया जाता है कि उनके प्रमाण,

---

1. "Philosophy has taken many different forms, but I find it useful to interpret the main tradition of western philosophy as having had two connected aims : (a) Clarification of concepts, for the purpose of (b) the critical evaluation of beliefs. — 'D.D. Raphael' – Problems of Political Philosophy